बच्चे असफल कैसे होते हैं

अभिषेक कुमार द्विवेदी

"कक्षा में आने वाली चुनौतियों व अपनी असफलता को अपनी सत्ता या व्यक्तिगत हैसियत पर होने वाले प्रहार के रूप में न देखें, बल्कि ऐसी चुनौतियों के रूप में स्वीकार करें जिनपर अभी आपको विचार करना है, जिन्हें सुलझाने का प्रयत्न करना है।" – जॉन होल्ट

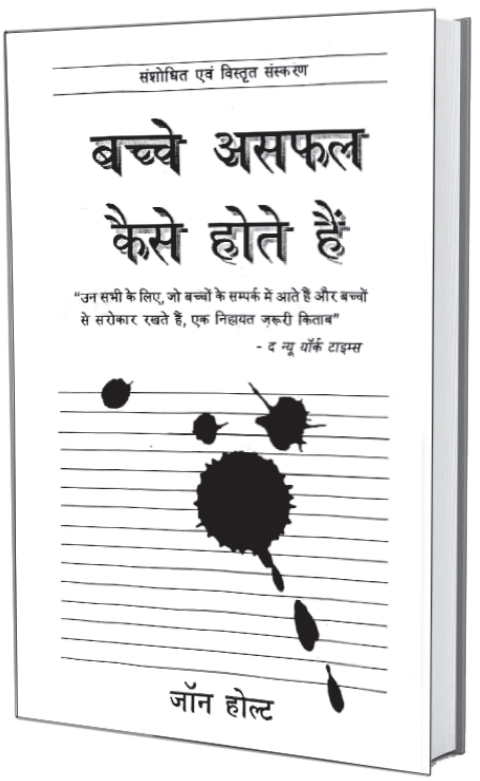

बच्चे असफल कैसे होते हैं

लेखक : जॉन होल्ट

प्रकाशक : एकलव्य प्रकाशन

परिचय

यह किताब एक शिक्षक के रूप में लेखक के अनुभवों पर आधारित पत्रों का संकलन है, इसलिए इस किताब को पढ़ना ऐसा है, मानो अपनी यात्रा के समानान्तर एक दूसरी यात्रा का हिस्सा बनना। चूँकि लेखक ने मुख्य रूप से गणित के शिक्षक के रूप में अपने अनुभवों को दर्ज किया है, इसलिए अन्य विषयों की तुलना में गणित की शिक्षण विधियों की किताब में बहुलता है। लेकिन इसके साथ ही उन्होंने दूसरे पहलुओं, जैसे– स्कूल के वातावरण, बच्चों का व्यवहार / स्वभाव, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, बौद्धिक क्षमता, शिक्षक की भूमिका, आदि विषयों पर अपने तर्कसम्मत विचार प्रस्तुत किए हैं। लेखक का मत है कि विद्यार्थी की असफलता के लिए परिवार की पृष्ठभूमि और बच्चे का नर्वस सिस्टम ज़िम्मेदार नहीं होते हैं। वे कहते हैं, "शिक्षण पद्धतियाँ ग़लत हो सकती हैं, विद्यार्थी नहीं।" यानी, दूसरे सारे घटकों के कारण बच्चे के सीखने पर नकारात्मक प्रभावों को काफ़ी सीमित किया जा सकता है, यदि बच्चे और शिक्षक के बीच जो भी हो रहा हो, उसे सही दिशा में ले जाया जाए। यह किताब मुख्य रूप से चार हिस्सों में बँटी ज़रूर है, लेकिन इनके अन्तर्गत लिखी बातें आवश्यक रूप से इन शीर्षकों में बँधी न होकर इनके अन्तर्सम्बन्धों के

“शिक्षण पद्धतियाँ ग़लत हो सकती हैं, छात्र नहीं।”

बारे में भी हैं। ये चार हिस्से हैं : ‘पैंतरेबाज़ी’ (बच्चों द्वारा कक्षा में), ‘भय और असफलता’, ‘वास्तविक ज्ञान’ और ‘स्कूल असफल कैसे होते हैं’। निम्न उपशीर्षकों के आधार पर मैंने किताब की बातों, उनसे मिली सीख और अपने अनुभवों को सम्मिलित रूप में यहाँ साझा किया है।

कक्षा में बच्चे

“हर कक्षा में विविध बौद्धिक क्षमताओं वाले बच्चे होते हैं, लेकिन ये मानना पड़ेगा कि मेधा का यह अन्तर जन्मजात नहीं ही होता है। कुछ बच्चे कुछ ख़ास परिस्थितियों (गतिविधियों) में अधिक कुशल (दक्ष) होते हैं। जैसे, मेरी कक्षा में कुछ बच्चे ऐसे हैं जो अंकों की गणित के बारे में काफ़ी हाज़िरजवाब हैं, लेकिन काग़ज़ को मोड़कर कुछ ख़ास तरह की आकृतियों के निर्माण में वो हर चरण पर मदद माँगते हैं। ज़ाहिर है कि कुछ बच्चे इसके उलट भी हैं। इसका मतलब तथाकथित ‘मस्तिष्क दोष’ का नाम देकर कुछ विशेष बच्चों को ‘बुद्धू’ कहकर वर्गीकृत करना उचित नहीं होगा।” होल्ट की कक्षा की एमली को मैं अपनी कक्षा की टीना की तरह देखता हूँ जो हमेशा सही होना चाहती है। भूल की कल्पना तक उसे स्वीकार नहीं है। दूसरे उसकी ग़लतियाँ निकालें तो वह चिढ़ जाती है। वह अपने द्वारा दिए गए किसी ग़लत जवाब पर दोबारा सोचना भी नहीं चाहती है। इसके बजाय उसे नया सवाल चाहिए। ये आत्मरक्षा की अलग-अलग रणनीतियाँ हैं। हर बच्चे के पास आत्मरक्षा की अपनी एक रणनीति हो सकती है। एक ही कक्षा सभी बच्चों को एक जैसी नहीं लगती है। हो सकता है कि कुछ बच्चों का मन लगे और बाक़ी के लिए यह उबाऊ और भ्रमित करने वाली हो। ऐसे में बच्चे का पलायन कक्षा से कब हो जाएगा, पता ही नहीं चलता, हालाँकि बच्चा शारीरिक रूप से वहाँ ही रहता है। ऐसे में बच्चे की रुचि को पहचानना ज़रूरी हो जाता है। कई बार कक्षा में एक दूसरे की शिकायतें ख़ुद को अच्छा साबित करने के लिए भी होती हैं, जो कक्षा प्रबन्धन में बड़ी चुनौती प्रस्तुत करती हैं। ऐसी परिस्थिति में कुछ तरीक़े, जैसे– लगातार बातचीत के ज़रिए एक दूसरे की असहजता पर बात करना, ऐसे नियम बनाना जिनमें उनकी श्रद्धा हो अर्थात भय की बजाय ऐसा व्यवस्था तंत्र बनाना जो सहयोग पर आधारित हो, आदि कारगर हो सकते हैं।

तथाकथित ‘मस्तिष्क दोष’ का नाम देकर कुछ विशेष बच्चों को ‘बुद्धू’ कहकर वर्गीकृत करना उचित नहीं होगा।

ग़लत उत्तर ज़रूरी

सिर्फ़ सही उत्तर ही पर्याप्त नहीं हैं। उसके स्पष्टीकरण के ज़रिए यह भी पता किया जाना चाहिए कि समझ कितनी विकसित हुई है, क्योंकि बच्चे के सीखने का उद्देश्य यह होता है कि वह किसी समस्या को हल करने के लिए टाल-मटोल व अप्रोचेबल रणनीतियाँ नहीं, बल्कि तर्कयुक्त मौलिक सोच का इस्तेमाल करे। वह किसी भी उत्तर के सही या ग़लत होने की चिन्ता किए बग़ैर जवाब दे, क्योंकि ग़लत उत्तर भी समझ विकसित करने में उतनी ही मदद करता है, जितना सही उत्तर। मैं अपनी कक्षा में देखता हूँ कि जैसे ही बच्चों को पता चलता है कि उनके द्वारा बताया गया उत्तर सही नहीं है तो वे बाक़ी सम्भावनाओं पर विचार करने लगते हैं और वापस कई बार अपनी ही ग़लती पर सोचते हैं। इसलिए कक्षा में ग़लत उत्तरों को भी उतना ही आमंत्रित करते हुए रखवाना चाहिए, अन्यथा यह छन्नी कुछ बच्चों को प्रयास करने से ही

रोक देगी और उन कारणों तक भी नहीं पहुँचने देगी जो ग़लत उत्तरों के लिए ज़िम्मेदार हैं। कई बार देखा गया है कि ग़लत उत्तर भी उतना ही तर्कसंगत होता है, जितना सही। मसलन, मैंने अपनी कक्षा में एक दिन पूछा, "9 गिलासों में से प्रत्येक को आधा-आधा भरने के लिए कितने गिलास पानी चाहिए?" शुभम ने जवाब दिया, "इसके लिए एक जग पानी चाहिए।" अब उसके उत्तर को नकारा नहीं जा सकता था न!

"हर कक्षा में विविध बौद्धिक क्षमताओं वाले बच्चे होते हैं, लेकिन ये तो मानना पड़ेगा कि मेधा का यह अन्तर जन्मजात नहीं ही होता है।"

सफलता और असफलता

लेखक कहते हैं, "सफलता और असफलता, ये केवल वयस्क विचार हैं, बच्चे के लिए तो आनन्द की मात्रा और काम के प्रति उत्सुकता ही मूल है। छोटा बच्चा साइकिल चलाते समय गिरने के बाद कभी नहीं कहता कि वह असफल हो गया, न ही वह अपने आगे के प्रयास करना बन्द करता है। उसके प्रयासों के परिणाम भी वयस्कों के अनुमोदन या आलोचना के दायरे से बहुधा बाहर ही होते हैं। असफलता की अपनी गरिमा है जिसका स्वरूप सकारात्मक है न कि लज्जाजनक।" अकसर 'सफलता' को कक्षा या पड़ोस के दूसरे बच्चों की सापेक्षिक उपलब्धियों के रूप में देखा जाता है। कई बार उदाहरण के साथ बच्चों को सफलता के नैतिक पाठ भी सुनाए जाते हैं जबकि उनको इससे कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता। और पड़े भी क्यों? जब वे स्कूल के कुछ उबाऊ, भ्रमपूर्ण तरीक़ों और विधियों के अलावा (जो भय के वातावरण में परोसी जाती हैं) बाक़ी जीवन के दूसरे कामों में आनन्द और सफलता दोनों ही प्राप्त कर रहे होते हैं।

भय, दुश्चिन्ता और तनाव

भय बच्चों को कुछ न समझ आने पर भी सवाल करने से रोकता है, जिससे ख़राब छात्र और ख़राब होते चले जाते हैं। कक्षा में सीखने के दौरान ग़लती कर लेना एक सहज प्रक्रिया होनी चाहिए, लेकिन सोचने वाली बात है कि 'ग़लती हो जाएगी' का भय, ग़लती हो जाने के बाद के भय से ज़्यादा कष्टकारक होता है। भय को काम करवाने का तरीक़ा समझा जाता है जबकि होता इसके उलट है। लेखक संगीत सीखने के अपने अनुभव से कहते हैं, "दिमाग़ में एक साथ नई चीज़ों को उँड़ेलने से भय और चिन्ता आते हैं और इससे जनित तनाव दिमाग़ की ग्रहण क्षमता को कहीं-न-कहीं कम कर देता है।" यह तथ्य काफ़ी हद तक वैज्ञानिक रूप से सिद्ध और मानव व्यवहार से जुड़ा है। मस्तिष्क दूसरे अंगों की तरह ही होता है, जिसका वर्तमान उपयोग तय करता है कि वह भविष्य में किस तरह से काम कर पाएगा। यानी, लगातार इस तरह के वातावरण में रहने से मस्तिष्क की कार्य क्षमता नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है।

शिक्षक के लिए

शिक्षक को ख़ुद को एक सुगमकर्ता के रूप में देखना चाहिए। कई बार शिक्षक साथी सोचते हैं कि मेरी और बच्चों की रुचियाँ समान हैं, और हमारा काम एक गरिमापूर्ण लक्ष्य के लिए इनका मार्गदर्शन करना है। सच यह है कि ऐसा कोई लक्ष्य बच्चों को दिखाई नहीं देता और इस तरह से हम अपनी इच्छाएँ बच्चों पर थोप रहे होते हैं। इससे स्कूल उनके लिए एक ऐसे क़ैदख़ाने की तरह बनता चला जाता है, जहाँ छुट्टी की घण्टी लगने के बाद उनको अगले दिन तक के लिए मुक्ति मिल जाती है। इतना ही नहीं, कई बार हमारी शिकायत होती है कि बच्चे कक्षा में अच्छा काम नहीं करते या सोचने और समस्या समाधान में ग़लत रणनीतियाँ अपनाते हैं। लेकिन इन सबके स्रोत भी हम शिक्षक लोग ही होते हैं, क्योंकि अकसर हम लोग एक न्यायाधीश की तरह ग़लत-सही का फ़ैसला सुनाते या अंक देते

हैं। हम आज्ञा-प्रेषक की तरह व्यवहार करते हैं। यही कारण है कि कई बार बच्चे स्कूल से अच्छा घर में सीखते हैं। बच्चे अगर कुछ समझ नहीं पा रहे हैं तो उसमें ग़लती केवल बच्चे की नहीं है। कई बार शिक्षक यह मानकर चलते हैं कि यह तो सरल और स्वाभाविक है, लेकिन वह सरल हो, ऐसा बच्चे के लिए नहीं हो सकता। इसलिए किसी विषय या विचार का परिचय इस तरह से शुरू करना चाहिए कि वह बच्चे के लिए बिलकुल नया है। "ऐसा सोचना, कि बच्चा अगर किसी निरर्थक (कम-से-कम उसके लिए) काम या प्रक्रिया को बार-बार दोहरा लेगा तो उसके लिए सार्थक हो जाएगा, ठीक उसी तरह है जैसे यह समझना कि तोते को कुछ भी रटाने से वह उसका अर्थ निकाल लेगा।" मेरे स्कूल में मॉर्निंग असेम्बली के समय ज़्यादातर बच्चों से महीनों के नाम बुलवाए जाते हैं। एक दिन मैंने जब कक्षा में महीनों में दिनों की संख्या व उनके क्रम पर बात की तो ज़्यादातर बच्चों के उत्तर ग़लत थे। लेकिन इसका मतलब ये भी नहीं कि कक्षा में ऐसे ही सवाल पूछे जाएँ, जिनके जवाब बच्चे न जानते हों। लेखक ने चर्चिल के हवाले से व्यंग्य किया है, "शिक्षकों के सवाल ये जानने के लिए थोड़े होते हैं कि आप क्या जानते हैं, वो होते ही इस बात का ढिंढोरा पीटने के लिए हैं कि आप क्या नहीं जानते हैं।"

असफलता की अपनी गरिमा है जिसका स्वरूप सकारात्मक है न कि लज्जाजनक।

"किसी शिक्षक के मन में ऐसा भाव भी आ सकता है कि मैं कुछ ऐसा जानता हूँ, जो तुम लोग नहीं जानते और मैं अब वही तुम लोगों को सिखाने जा रहा हूँ। शिक्षक अगर 'प्रतिभाशाली' है तो यह विचार और प्रबल होता है।" शिक्षक का यह दृष्टिकोण बच्चों के सीखने में सबसे बड़ी बाधा है। शिक्षक कक्षा में सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, तार्किक, न्यायप्रिय और हमेशा सही रहने की छवि बनाते हुए पाए जाते हैं। मेरी कक्षा में बच्चे अकसर यह कहते हुए पाए जाते थे कि सर, आप टीचर हैं, आपको सब आता है! मैं कई बार सोचता हूँ कि यह विचार बच्चों के अन्दर आया कैसे? इसको तोड़ने के लिए मैं उनसे बात करता कि देखो! मैं तुम्हारी भाषा अभी भी अच्छे-से नहीं बोल पा रहा हूँ, जिसको तुम रोज़ मुझे सिखाने की कोशिश करते हो। उन्हें यह उदाहरण भी दिया कि कल कैरम बोर्ड में मुझसे अच्छा तो तुम लोग खेल रहे थे। अब हाल ये है कि जैसे ही एक बच्चा ऐसा कहता है, दूसरा उसको समझा देता है कि मैं किन-किन चीज़ों में उनसे पीछे हूँ। यहाँ मूल बात बच्चों के प्रति ईमानदार रहने की है।

मुझे अपने स्कूल का एक वाक़िया याद है जब एक शिक्षक ने शोरग़ुल का हवाला देकर कक्षा के सारे बच्चों को एक कष्टप्रद मुद्रा में खड़े होने के लिए कह दिया था। मैंने उस चार साल की बच्ची को बाक़ी बच्चों से अलग किया, जो अपनी बड़ी बहन के साथ स्कूल आई थी। वह काफ़ी डर गई थी और ख़ुद को उस मुद्रा में व्यवस्थित करने की कोशिश कर रही थी। थोड़ी देर बाद वे शिक्षक उसी कक्षा को पढ़ा रहे थे। सारे बच्चे बड़ी शान्ति के साथ दिए गए काम में तल्लीन थे। इस किताब को पढ़ते हुए यह घटना याद आई क्योंकि इसमें लेखक कहते हैं, "शिक्षक सोचते हैं कि बच्चे उनकी मर्ज़ी से ही सबकुछ करते चले जाएँ, पर साथ ही यह एहसास भी न होने दें कि सबकुछ वे डर की वजह से कर रहे हैं।" यानी, शिक्षक अपनी सहृदय (स्नेही) व्यक्ति की छवि भी बरक़रार रखना चाहते हैं। शिक्षकों के सन्दर्भ में एक और बात यह भी है कि क्या कभी स्कूल में ऐसे अवसर (माहौल) दिए जाते हैं, जब बच्चे स्कूल या शिक्षक के प्रति मन की भावना या अपनी घृणा, क्रोध व अनिच्छा को व्यक्त कर सकें? क्या शिक्षक ये स्वीकार कर सकेंगे? अगले पेज पर दिए गए चित्र की लिखावट मेरी

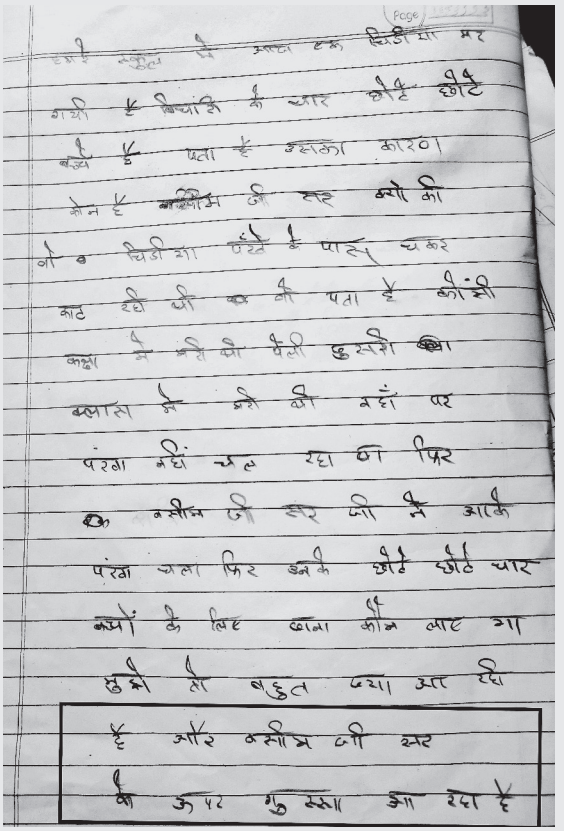

कक्षा की एक छात्रा की है जिसमें वह अपने एक शिक्षक के प्रति एक ख़ास घटना को लेकर ग़ुस्सा है। लेकिन मेरे कहने के बाद भी उसने यह लिखावट सम्बन्धित शिक्षक को नहीं दिखाई।

बच्चे और वयस्क

बच्चों के प्रति वयस्कों की धारणाएँ भी कई बार उनके कार्यकलापों को तय करती हैं। जैसे, कई बार किसी बच्चे को अगर 'बुद्धू' कहा जाए तो कुछ समय बाद उसको भी लगने लगता है कि शायद कुछ तो उसमें नहीं है, जो बाक़ी बच्चों में है। अत्यन्त सावधान अभिभावकों के बच्चे कुछ नया करने से घबराते हैं या कई बार अति-आत्मविश्वास में ('समझ क्या रखा है, मैं कुछ भी कर सकता हूँ', के भाव में) ज़रूरत से ज़्यादा जोख़िम उठाते हैं। लेखक ने उदाहरण दिया है, "एक प्ले गार्डन में जब तक अभिभावकों को बच्चों के साथ अन्दर जाने दिया गया, तब तक बच्चों के साथ दुर्घटनाएँ ज़्यादा होती थीं। निष्कर्ष ये निकाला गया कि अगर बच्चों को स्वयं निर्णय लेने दिया जाए तो वे साहसिक कार्य करने में सावधानी बरतते हैं।" मुझे लगता है कि कक्षा में बच्चे की अनावश्यक तारीफ़ (जिसको वह भाँप लेता है) या किसी भी तरह का निरुत्साह, दोनों ही उसको मानसिक और व्यवहारिक स्तर पर प्रभावित करते हैं। बच्चे आमतौर पर वयस्कों की दुनिया में काफ़ी रुचि लेते हैं, लेकिन हम वयस्क हमेशा एक परिधि में ही उनको रखते हैं। इसलिए हमारे वयस्कतापूर्ण व्यवहार के प्रति उनकी नज़र शंका से भरी होती है और कई बार हमारे प्यार भरे शब्दों से भी उन्हें अरुचि होती है। ज़ाहिर है, ऐसे शब्दों की बजाय उन्हें भी प्रशंसा, आदर और सम्मान की ज़रूरत होती है।

पाठ्यक्रम और स्कूल

अगर बच्चा कुछ सीखना चाहता है तो वह उसे याद भी रखता है और उस ज्ञान का उपयोग भी वह करता है। परन्तु जो कुछ भी दूसरों को ख़ुश (शान्त) रखने के लिए सीखता है, जब सामने वाले को ख़ुश (शान्त) रखने की ज़रूरत ख़त्म हो जाती है तो बच्चा उस ज्ञान को भूल जाता है। यही कारण है कि बच्चे स्कूल में सीखी अधिकांश बातें भूल जाते हैं। पाठ्यक्रम बच्चों की वास्तविक ज़रूरतों व सामाजिक आवश्यकताओं पर निर्भर होना चाहिए। होता ये है कि अलग-अलग क्षेत्रों के विशेषज्ञ अपने विषयों को महत्त्वपूर्ण मानते हुए पाठ्यक्रम का निर्धारण करते हैं। कोई भी विषय दूसरे से महत्त्वपूर्ण नहीं होता, महत्त्वपूर्ण केवल सीखने की प्रक्रिया होती है। कई बार भविष्य (दो-तीन दशक बाद) की ज़रूरतों का पता भी नहीं होता। तो क्यों न ऐसे लोग तैयार किए जाएँ जो सीखने में विश्वास करें और ज़रूरत पड़ने पर कोई भी विषय सीखने के लिए तैयार

रहें। लेकिन तमाम पाठ्यक्रम और स्कूल 'उत्पादक' छात्रों को उत्साहित करते हैं और 'विचारक' छात्रों को हतोत्साहित।

"दिमाग़ में एक साथ नई चीज़ों को उँड़ेलने से भय और चिन्ता आते हैं और इससे जनित तनाव दिमाग़ की ग्रहण क्षमता को कहीं-न-कहीं कम कर देता है।"

बच्चों की रणनीतियाँ

कक्षा में बच्चे आत्मरक्षा में अनेक रणनीतियाँ अपनाते हैं। इसमें वे 'शिक्षक से उत्तर निकलवाने की कोशिश' से लेकर 'तुक्का लगाओ', 'शिक्षक की प्रतिक्रिया देखो', 'चेहरे के भाव देखकर उत्तर बदलना' जैसी तरकीबें इस्तेमाल करते हैं। मेरी कक्षा में एक बार घटाने के इबारती सवालों पर अभ्यास के दौरान हंसिका ने एक सवाल के जवाब में 48 उत्तर दिया (सही जवाब 49 था)। मैंने उससे कहा, "तुम दोबारा कोशिश करो, 'थोड़ा ग़लती है'।" उसने दोबारा कोशिश की और सही उत्तर तक पहुँच गई। आगे जब भी मैंने उसको उसके उत्तर पर पुनर्विचार करने के लिए कहा तो वह पूछती, "थोड़ा ग़लती है क्या?" अगर मेरा जवाब 'हाँ' होता तो वह अपने जवाब में से एक कम या ज़्यादा करके जवाब देती। कुछ दिनों बाद मैंने उसकी यह रणनीति समझ ली और अब मेरा जवाब होता, "मुझे नहीं पता कितना ग़लत है।" इसी तरह दूसरे बच्चों के पास भी अपनी-अपनी रणनीतियाँ हैं। मसलन, समझ को नकारना या समझ की चाह न होना या कुछ रिस्पॉन्स न देना, आदि, क्योंकि चुप्पी, ग़लत उत्तर देने से सुरक्षित रखती है। ये रणनीतियाँ भय से पैदा होती हैं जिसमें वे आत्मरक्षा का सहारा लेते हैं। फिर ये रणनीतियाँ उनकी आदत बन जाती हैं। कई बार शिक्षक जान-बूझकर भय का इस्तेमाल नहीं करते, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से वह विद्यमान होता है। जैसे, मुझे ये जानने में काफ़ी समय लगा कि कुछ बच्चे किसी सवाल पर अपना जवाब इसलिए भी नहीं देते थे क्योंकि उन्हें अपने सहपाठियों द्वारा उपहास का भय रहता था। जब बच्चा धोखे से या किसी दूसरे तरीक़े से उत्तर चुराने की कोशिश करता है तो इसके दो नुक़सान हैं– एक सीखना नहीं होता और दूसरा, उसके दिमाग़ में बैठ जाता है कि ये सब चीज़ें स्कूल में की जा सकती हैं, इसलिए सीखने की ज़रूरत ही नहीं है। कमज़ोर या अयोग्य बने रहना भी एक रणनीति है, क्योंकि ऐसे में उनसे ज़्यादा अपेक्षा नहीं की जाती और वे सुरक्षित महसूस करते हैं। ऐसे में उन्हें उम्मीद के टूटने के बाद का भय नहीं सताता। यही कारण है कि कई बार माता-पिता की ऊँची अपेक्षाएँ भी बच्चे द्वारा असफलता का रास्ता चुनने का कारण बनती हैं।

वास्तविक ज्ञान

लेखक बच्चों के वास्तविक ज्ञान या उनकी अवधारणात्मक समझ को परखने के कुछ तरीक़ों पर बात करते हैं। जैसे, किसी अवधारणा को समझने के बाद अगर बच्चा उसे अपने शब्दों में बताता है, उसका उदाहरण देता है, उसको उपयोग में लाता है, उसके परिणाम का अनुमान लगाता है और उसका विपरीत कर सकता है, तो इसका अर्थ होगा कि बच्चे में उस अवधारणा की अच्छी समझ है। मैंने अपने अनुभव से भी देखा है कि कई बार बच्चे यांत्रिक विधियों के ज़रिए उत्तर तक पहुँच जाते हैं। ऐसे में अलग-अलग सवालों और चुनौतियों पर अभ्यास ज़रूरी है। कई बार बच्चे में भाषा की अस्पष्टता या पूर्वज्ञान की वजह से भ्रम की स्थिति पैदा हो जाती है और वे बार-बार ग़लती दोहराते हैं। ऐसे में प्रतिक्रिया के कारण तक पहुँचे बिना केवल उत्तर थोपना अवधारणात्मक समझ को किनारे कर देता है। लेखक उस पुरानी धारणा से आगे बढ़ने का सुझाव देते हैं, जिसमें कहा जाता था कि बच्चों से ऐसे सवाल पूछो, जिनका जवाब कुछ कहने की बजाय कुछ करने से मिलता हो। लेखक का मानना है कि ऐसे में बच्चे को यह जानने के लिए, कि उसका प्रयास सही दिशा में है या ग़लत में, हमेशा निरीक्षक के अनुमोदन पर निर्भर रहना पड़ेगा। इसकी बजाय

लेखक ने सुझाव दिया है कि बच्चे को कुछ ऐसा करने को दिया जाए कि वह अपने किए गए काम की सत्यता को ख़ुद ही जाँचे। ये बात मुझे काफ़ी प्रभावी लगी क्योंकि ऐसे में न केवल शिक्षक की न्यायाधीश की भूमिका कम हो जाएगी, बल्कि बच्चे जब स्वयं अपने प्रयास का मूल्यांकन करेंगे तो उनमें आत्मविश्वास भी आएगा। चित्र के अलग-अलग हिस्सों को जोड़कर एक पूरा चित्र बनाना या किसी इबारती सवाल की ठोस वस्तुओं से मॉडलिंग करना, इस तरह की कुछ गतिविधियाँ हो सकती हैं। जैसे मैंने कक्षा 4 और 5 में एक बार पूछा था, "कक्षा के दो छात्रों के पास बराबर-बराबर पेन थे। पहले ने दूसरे छात्र को दो पेन दे दिए। दूसरे छात्र के पास पहले से तीन गुना ज़्यादा पेन हो गए। शुरू में उन दोनों के पास कितने पेन रहे होंगे?" अब कक्षा में सारी सम्भावनाओं को तलाशने के लिए मैंने दो विद्यार्थियों को खड़ा किया और देखा कि हर बार अलग-अलग पेनों की संख्या के साथ प्रश्न की शर्त के अनुसार अपने उत्तरों की सत्यता को वे ख़ुद जाँच पा रहे थे। बीच-बीच में मुझे शर्त याद दिलानी पड़ रही थी। इससे उन्हें ये भी समझ आ रहा था कि प्रश्न की भाषा उत्तर तक पहुँचने में कितनी ज़रूरी है। इस दौरान मैंने भी सीखा कि बच्चों को सही उत्तर तक पहुँचाने की शिक्षक की जल्दबाज़ी, समझ की प्रक्रिया को विकसित होने देने में बाधक होती है। लेकिन उपर्युक्त प्रक्रिया के दौरान कुछ ऐसे बच्चे भी थे, जो एक-दो प्रयास के बाद बिलकुल भी रुचि नहीं ले रहे थे। वहीं कुछ बच्चे इस कदर सोचने लगे थे कि दूसरे का बीच में बोलना भी उनको ग़ुस्सा कर रहा था। इस किताब को पढ़ने के बाद अब मैं इन सारी बातों को जोड़ पा रहा था। लेखक ने बच्चों को दो तरह के दृष्टिकोण वाले बच्चों में बाँटा है– "एक, वे जो समस्या-केन्द्रित होते हैं, जो ये मानते हैं कि दी गई समस्या एक ऐसी परिस्थिति है जिसका एक भाग छिपा हुआ है और ऐसी परिस्थिति को अपने दिमाग़ में रचकर छुपे हुए भाग को ढूँढ़ा जा सकता है। दूसरे, वे बच्चे होते हैं जो उत्तर-केन्द्रित होते हैं। उनके लिए सवाल एक घोषणा है, जिसका जवाब दूर देश में छिपा हुआ है। कई बार उस दूर देश से वो कुछ लाते हैं और शिक्षक को तुरन्त दिखाकर उसकी पुष्टि करना चाहते हैं।" ऐसे में अगर शिक्षक ख़ुद ही 'उत्तर-केन्द्रित' दृष्टिकोण वाला व्यक्ति हो तो स्थिति और ख़राब हो जाती है। लेखक ने किताब में कई जगह सीखने के व्यवहारवादी तरीक़े को आलोचनात्मक नज़रिए से देखा है। जैसे, यदि क्लासिकल कन्डीशनिंग (नकारात्मक और सकारात्मक सम्बलन) के माध्यम से बच्चे के व्यवहार को बदलने की कोशिश की जाती है तो उसकी वास्तविक बुद्धिमत्ता और सोचने की क्षमता का उपयोग नहीं हो पाता है। नतीजतन, बच्चा इन्हीं उद्दीपनों के लिए काम करना शुरू कर देता है, और 'सीखने का आनन्द' पीछे रह जाता है। मैं इसे ऐसे सोचता हूँ कि कुछ छात्रों को शुरुआती चरण में प्रोत्साहन, जिसमें उसकी जेन्युइन तारीफ़ करना शामिल है, कई बार 'सीखने के आनन्द' तक ले जाता है।

"ऐसा सोचना, कि बच्चा अगर किसी निरर्थक (कम-से-कम उसके लिए) काम या प्रक्रिया को बार-बार दोहरा लेगा तो उसके लिए सार्थक हो जाएगा, ठीक उसी तरह है जैसे यह समझना कि तोते को कुछ भी रटाने से वह उसका अर्थ निकाल लेगा।"

स्व-मूल्यांकन

गणित की कक्षा में काम करने के दौरान मुझे ऐसा लगता रहा है कि आगमन (inductive) तर्क, जिसमें बच्चे अभ्यासों के ज़रिए नियम (सूत्र) गढ़ने तक की प्रक्रिया स्वयं कर रहे होते हैं, बच्चे की सीखने की प्रक्रिया और ख़ुद की समझ विकसित करने में निगमनात्मक (deductive) तर्क, जो कि शिक्षक-केन्द्रित हो जाता है, की बजाय ज़्यादा सहायक होते हैं। ये निजी सामान्यीकरण बच्चे की संज्ञानात्मक क्षमता से भी सीधे जुड़े होते हैं। ख़ुद को तटस्थ होकर बौद्धिक रूप से देखने की क्षमता (स्व-मूल्यांकन) भय के वातावरण में ख़त्म हो जाती है। इस किताब के लेखक 'प्रोग्राम्ड

लर्निंग' के पक्ष में नहीं हैं, जिसमें माना जाता है कि बच्चे को दिए गए लगातार फ़ीडबैक से उसके व्यवहार में मनचाहा परिवर्तन लाया जा सकता है। लेखक का मानना है, "इससे बच्चे की शिक्षक की प्रतिक्रिया पर निर्भरता बढ़ जाएगी। इसलिए बच्चे की सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक का हस्तक्षेप तार्किक और सीमित होना चाहिए, ताकि ऐसे बच्चे तैयार हों जो अपने ही परिणामों को परखने के लिए किसी दूसरे की प्रतिक्रिया पर निर्भर न रहें।" पर सवाल ये भी है कि क्या बच्चे ख़ुद तय कर पाते हैं कि उन्हें समझ आया या नहीं, तो हमारी अपेक्षा ये कैसे हो सकती है कि वे हमें बताएँ कि फलाँ अवधारणा उन्हें समझ आई या नहीं? इसके जवाब में मुझे लगता है कि कुछ चुनौतियों को देने के बाद बिना हस्तक्षेप के बच्चे का अवलोकन ज़रूरी है (परीक्षा भी इसी तरह का एक साधन है)। साथ ही धीरे-धीरे बच्चे के साथ डायलॉग (क्यों, कैसे) के ज़रिए उसमें स्व-मूल्यांकन का कौशल विकसित करना भी उतना ही ज़रूरी है।

"शिक्षक कक्षा में सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, तार्किक, न्यायप्रिय और हमेशा सही रहने की छवि बनाते हुए पाए जाते हैं।"

परीक्षाएँ

समकालीन परीक्षा के स्वरूप पर जॉन होल्ट ने अपनी असहमति जताई है। उनके मुताबिक़, "एक स्थापित पैटर्न पर आधारित परीक्षा, सीखने के रटन्त तरीक़े को बढ़ावा देती है। कई बार तो शिक्षक पढ़ाने की जगह एक अच्छा परीक्षार्थी तैयार करने में ज़्यादा तल्लीन रहते हैं।" प्राथमिक कक्षाओं के आगे की भी परीक्षाओं को लेखक केवल छलावा मानते हैं, क्योंकि परीक्षा की पूर्व-घोषणा, आने वाले पाठों पर चर्चा और पूछे जाने वाले सवालों पर अभ्यास, ये सब 'पहले बताओ, फिर परीक्षा लो' की प्रक्रिया पर आधारित हैं। इससे सबसे ज़्यादा नुक़सान विद्यार्थियों का होता है, क्योंकि यह अप्रोच सोचने-समझने की क्षमता विकसित करने की बजाय केवल तथ्यों और विधियों तक सीमित (फ़ोकस्ड) रहता है।

गणित सिखाना

होल्ट लिखते हैं कि गणित सिखाना जितना सरल समझा जाता है, उतना है नहीं। लेखक ने मुख्य रूप से अपनी कक्षा में क्यूज़ीनायर छड़ों (Cuisenaire Rods – अलग-अलग रंगों और लम्बाई वाली दस तरह की छड़ों का समूह) को मुख्य ठोस सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया। इनका प्रयोग भिन्न की अवधारणा, अभाज्य संख्याओं, जोड़ और गणित की अन्य अवधारणाओं (जैसे– भाग, घटाव) को समझने के लिए किया गया। हालाँकि कुछ दिनों तक उन्होंने डीन्स ब्लॉक्स का भी प्रयोग किया, लेकिन ये उनकी कक्षा में बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हुए। लेखक ने गणितीय अवधारणाओं को वास्तविकता से जोड़ने पर ज़ोर दिया है। ज़्यादातर बच्चों को नाप-तौल (दूरी, तराजू, घड़ी, थर्मामीटर) के माध्यम से संख्या परिचय कराने से वो ज़्यादा रुचि से सीख रहे थे। इसी तरह वे स्वयं के शरीर, अर्थात उनका वज़न, ऊँचाई या वो कितना कूद सकते हैं, आदि के बारे में काफ़ी उत्सुक रहते हैं। शारीरिक सन्दर्भ के इस तरीक़े को मैंने अपनी कक्षा में गणित सिखाने में प्रयोग किया। इसके लिए मैंने बच्चों द्वारा ही एक दूसरे की लम्बाई व वज़न नापकर एक चार्ट तैयार कराया और कक्षा में लगा दिया। इस दौरान मैंने पाया कि बच्चे दो और तीन अंकों की संख्या की तुलना और आँकड़ों के प्रबन्धन जैसे गणितीय कौशलों पर स्वतः सोच रहे थे। इस दौरान मैं उनसे कुछ सवाल भी पूछता। जैसे, कितने बच्चे आशीष की तुलना में अधिक लम्बे हैं, आदि।

होल्ट के द्वारा बच्चों के साथ कक्षा में किए गए कई प्रश्नों के उदाहरण और उनपर बच्चों के रिस्पॉन्स, मेरे लिए गणित में बच्चों की समझ की पड़ताल करने की तमाम विधियों पर विचार

(या अभ्यास) करने के तरीक़े सुझाते हैं। जैसे, जब होल्ट ने कक्षा में पूछा कि एक छड़ के कितने एक-तिहाई टुकड़े किए जा सकते हैं, तो कुछ बच्चों का जवाब आया कि ये बात छड़ की लम्बाई पर निर्भर करती है। जवाब सुनने में हमारे लिए भले ही हास्यास्पद लगे, लेकिन बच्चों द्वारा ऐसे जवाब पूरी गम्भीरता से दिए जाते हैं। ये जवाब बताते हैं कि विधियों या तथ्यों के साथ-साथ समझ पर काम करने से ही गणित शिक्षण के वास्तविक उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते हैं। इसी तरह का एक और उदाहरण लेखक ने दिया है। "जब वह कक्षा में बच्चों से पूछते हैं कि ऐसी दो रेखाएँ खींचो जहाँ एक रेखा दूसरी की 5 / 7 हो, तो सारे बच्चों ने एक 7 सेमी और उसके बग़ल में दूसरी 5 सेमी की रेखा खींच दी। पुनः जब लेखक ने पूछा कि एक ऐसी रेखा खींचो जो दूसरे की 5 / 17 हो छात्रों का जवाब था कि कॉपी का पेज इतना लम्बा नहीं है कि उसमें 17 सेमी की लाइन खींची जा सके।" ऐसे कई जवाब मुझे मेरी गणित की कक्षा में भी सुनने को मिलते हैं। उदाहरण के तौर पर, एक दिन मैंने पाँचवीं कक्षा में एक सवाल पूछा और उसको चित्र के रूप में प्रदर्शित किया। सवाल था, "एक बन्दर पहली बार में 2 मीटर की छलाँग लगाता है और उसके अगली बार 1 मीटर की छलाँग लगाता है उसे 18 मीटर दूर जाने के लिए कितनी बार छलाँग लगानी पड़ेगी?" बच्चों के पास इसके कई जवाब थे, जिनको मैंने ब्लैकबोर्ड पर ही लिख दिया। जैसे ही मैं उनसे उत्तर की व्याख्या बताने को कहता तो कई बच्चे अपने जवाब बदल देते थे। उनमें से कई तो मुझसे जवाब निकलवाने की कोशिश कर रहे थे। कुछ उत्तर (जैसे– 30 बार, 27 बार, आदि) ऐसे थे, मानो सवाल को समझा ही न गया हो। मैंने फिर उनसे सवाल को दोहराकर मुझसे पूछने को कहा। कुछ बच्चे ऐसे थे, जो सवाल की भाषा को समझ चुके थे। उन्होंने सही उत्तर बताए भी, लेकिन अभी तक मैंने किसी भी उत्तर के सही होने की घोषणा नहीं की थी। अब तक एक बच्ची ने उत्तर तक पहुँचने का अपना तरीक़ा अपनाया। जो लाइन मैंने 18 मीटर की दूरी को दर्शाने के लिए बनाई थी और उसमें शुरुआती दो छलाँगों को प्रदर्शित किया था, उसने वहीं से आगे उसी लाइन पर छलाँगों को क्रमशः दर्शाना शुरू किया। ज़ाहिर है, सही उत्तर तक तो वह नहीं पहुँच पाई लेकिन वह अपने उत्तर को ग़लत माने, इसकी कोई वजह उसे समझ नहीं आ रही थी। इस पूरी प्रक्रिया में सवाल तक पहुँचने की प्रक्रिया और बच्चों द्वारा जवाब खोजने के तरीक़ों की समझ मुझ तक पहुँच रही थी।

कुल मिलाकर, जॉन होल्ट की यह किताब आज भी हम शिक्षकों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। कक्षा में क्या होता है, क्यों बच्चे अपनी पूरी क्षमता के साथ सीख नहीं पाते हैं, और शिक्षक की सीखने-सिखाने में क्या भूमिका है, इन सवालों का गहराई के साथ विश्लेषण करती हुई यह किताब शिक्षकों के लिए महत्त्वपूर्ण निर्देश देती है। इस किताब में व्यक्त समस्याओं, उलझनों और उन्हें हल करने की समझ आज भी हमारे लिए बहुत प्रासंगिक है। एकलव्य से छपी इस किताब का अनुवाद पूर्वा याज्ञिक ने किया है।

अभिषेक द्विवेदी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से भौतिकशास्त्र से स्नातक और परास्नातक किया है। तक़रीबन एक वर्ष से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन टोंक (राजस्थान) में एसोसिएट के रूप में कार्यरत हैं। वे प्राथमिक विद्यालय में गणित विषय में शिक्षण कार्य कर रहे हैं। अभिषेक गणित और विज्ञान विषय की शिक्षण विधियों के अतिरिक्त बच्चों की सामाजिक, आर्थिक एवं भावनात्मक पृष्ठभूमि और कक्षा में उसके प्रभावों को समझने में रुचि रखते है।

सम्पर्क : abhishek.dwivedi@azimpremjifoundation.org